सचित्र लोक-कथा-माला

हिमाचल की लोक-कथाएँ

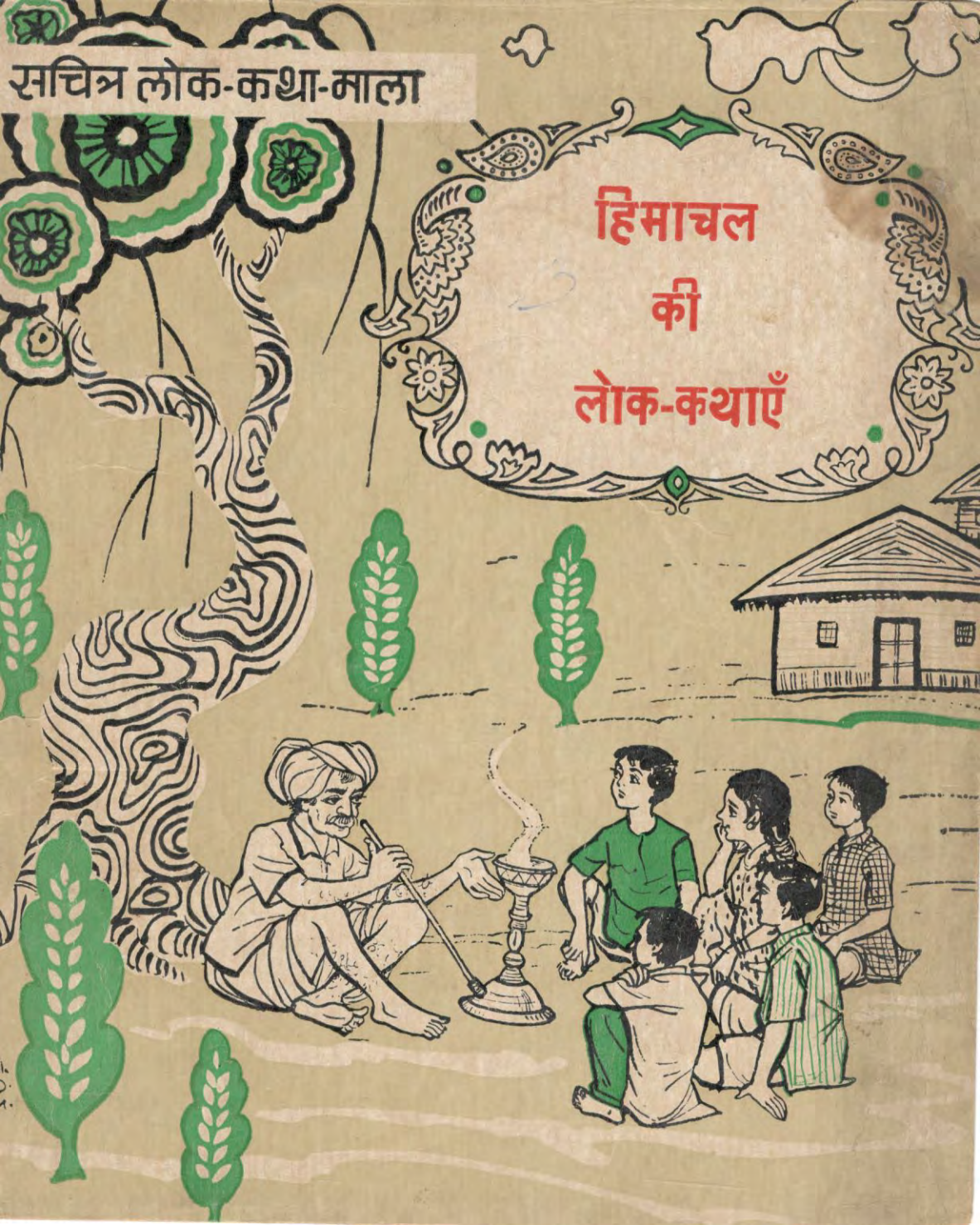

हिमाचल की लोक-कथाएँ

सन्तराम वत्स्य

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

प्रकाशक :
आत्माराम एण्ड संस,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006.

शाखा :
17, अशोक मार्ग, लखनऊ

© आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-110006

संस्करण : 1991

मूल्य : 10 रुपये

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस
गली न० 2, बलबीर नगर, शाहदरा दिल्ली-110032

दो शब्द

हिमाचल के अंचल में अपने जीवन की कठोर पगडंडी पर विचरते लोग यद्यपि आर्थिक दृष्टि से काफी गरीब हैं, पर सन्तोष के लिए संस्कृति का अक्षय कोष उनके पास अवश्य मौजूद है।

पीढ़ियों से विरासत में आ रही लोक-कथाओं, लोक-गीतों और लोक-नृत्यों की बहती मीठी धारा में से वे जीवन के कड़वेपन और कठोरताओं को भूलकर अंजलि भर-भर जीवन-रस के घूंट पिया करते हैं।

विभिन्न प्रदेशों की लोक-संस्कृतियों में मनुष्य के मन की मौलिक एकता के होते हुए भी विभिन्नताएँ भी होती हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उन प्रदेशों के लोग। इन विभिन्नताओं के बीच से मानव की एकता को देखने-परखने के साधनों में लोक-संस्कृतियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होना चाहिए, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस छोटी-सी पुस्तक में प्राकृत हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत केवल कांगड़ा जनपद की लोक-कथाएँ संग्रहीत हैं। यदि प्रस्तुत संग्रह लाभ-दायक सिद्ध हुआ तो क्रमशः हिमाचल के विभिन्न जनपदों की लोक-कथाएँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

सन्तराम वत्स्य

क्रम

1.	राजा बाणभट्ट	...	1
2.	भीखू और शाह मस्तअली	...	9
3.	वीर गूगा चौहान	...	13
4.	कुञ्जेश्वर महादेव	...	18
5.	एक थी राजा की लड़की	...	21
6.	भाई का बदला	...	29
7.	शेर और महाशेर	...	37

1

राजा बाणभट्ट

बहुत पहले कांगड़ा में राजा बाणभट्ट राज्य करता था। उसका असल नाम कुछ और ही रहा होगा, किन्तु जीविका के लिए बाण (रस्सियाँ) बटने के कारण ही उसका नाम बाणभट्ट पड़ गया था। उसकी प्रजा ने उसके वास्तविक नाम को भूलकर, अपने मन में इसी नाम को स्थान दिया। आज भी कांगड़ा के बड़े-बूढ़े स्त्रियों की नासमझी और गहनों से प्यार की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए, राजा बाणभट्ट की कथा उसके प्रति अत्यन्त श्रद्धा और सहानुभूति दर्शाते हुए सुनाते हैं।

राजा बाणभट्ट की रानी का नाम था मेहतो। मेहतो अपने हाथ से रसोई बनाती, बर्तन माँजती, कपड़े धोती और किले की दीवार के साथ नीचे बहते नाले से पानी खींचती।

इन कामों से छुट्टी पाती तो बैठी चरखा कातती। राजा-रानी इसी गाढ़े सूत के कपड़े पहनते।

राजा बाणभट्ट दोपहर तक राज-काज देखता और फिर अपने झोंपड़े में लौट आता। किले के भीतर ही एक कोने में उसने अपने लिए झोंपड़ा बना रखा था। राजा जितनी देर राज-काज करता, राजसी पोशाक पहने रहता और इसके बाद देहातियों की पोशाक में रहता। झोंपड़े के बाहर किले की दीवार पर बैठा वह सूरज डूबने तक रस्सियाँ बटता।

किले की दीवार के साथ बड़ी सड़क थी। सड़क पर आते-जाते लोग राजा को रस्सियाँ बटते देखते तो श्रद्धा से अजाने ही उनके सिर झुक जाते। वे कहते—"ऐसा धर्मात्मा राजा, जो राज्य के खज़ाने से अपने लिए एक कौड़ी भी न खरचे, सतयुग में भी हुआ हो, ऐसा न कहीं पढ़ा, न कहीं सुना।"

और रानी, वह तो साक्षात् लक्ष्मी ही थी। यह उसके सतीत्व का ही प्रताप था कि वह कच्चे सूत की डोरी से और कच्चे घड़े से, किले वाली पहाड़ी के नीचे बहते नाले से पानी खींचती, पर क्या मज़ाल कि कभी घड़ा फूटा हो या डोरी टूटी हो।

ऐसे राजा और रानी को पाकर प्रजा अपने को धन्य समझती थी।

राजा बाणभट्ट के राज्य-काल में यह पहाड़ी प्रदेश खूब सम्पन्न था। किसानों को नाममात्र लगान देना पड़ता। लोग मेहनती थे। धरती सोना उगलती थी। लोग कहते—"यह सब धार्मिक राजा का पुण्य-प्रताप है।"

रानी मेहतो कुल्लू के राजा की बेटी थी। कुल्लू की झोंपड़ियों में आज भी सौन्दर्य की कमी न हुई तो रानी मेहतो तो राजमहलों में पली थी। अप्सराओं-जैसा था उसका रूप, तिस पर तपस्विनी का-सा तेज! दोनों ने मिलकर उसे दिव्य सौन्दर्य प्रदान किया था। उच्च कुलोत्पन्न राजा भी, ऊँची पर्वत-चोटियों पर पैदा होने वाले देवदार वृक्ष की तरह लम्बा, स्वस्थ और गम्भीर था। देखने वाले कहते—"इन्हें विधाता ने एक-दूसरे के लिए ही बनाया है।"

ऐसे राजा को पाकर, प्रजा फूली न समाती और प्रजा को सुखी देखकर राजा स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करता।

कांगड़ा में मेला लगा। दूर-दूर के लोग आए। अमीर भी और गरीब भी। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार सभी बन-ठनकर आए थे। लोगों ने अच्छे से अच्छे कपड़े पहन रखे थे। स्त्रियाँ गहनों से लदी हुई थीं। कोई मिठाई खरीद रहा था, कोई खिलौने। बच्चे हिंडोले में झूल रहे थे। खूब शोरो-गुल हो रहा था।

राजा-रानी भी मेले में गये। जाते भी क्यों न! जहाँ इतनी सारी पुत्रवत् प्रजा आई हो, वहाँ उसका पालक न जाए। जो उन्हें पहचानते थे वे अपने साथवालों को दिखाकर कहते—"वह देखो हमारे राजा-रानी।"

वैसे उन्हें पहचानना कठिन था। क्योंकि न तो उनके साथ अंग-रक्षक थे, और न अमला-फैला। पहनावा बिलकुल सादा था। राजा और प्रजा के बीच कोई ऐसी दीवार नहीं थी, जो उन्हें अलग करके दिखा पाती।

एक बड़ा सेठ भी अपनी सेठानी के साथ मेला देखने आया था। इन सेठजी की उन दिनों कांगड़ा में बड़ी धाक थी। कोई कहता कि सेठजी के पास बीस लाख सोने की मोहरें हैं, कोई कहता कि पचास लाख। इतने बड़े सेठ की सेठानी की सज-धज का क्या कहना! उसका भारी-भरकम शरीर, उस पर गहनों का बोझ और उस पर भी अमीरी का अभिमान। गहनों में जड़े हुए हीरे-मोती देखनेवालों की आँखों में चकाचौंध पैदा कर रहे थे, विशेष रूप से गले का 'नौलखा हार'। इस हार की प्रसिद्धि सेठजी की प्रसिद्धि से भी अधिक थी। यह अपनी किस्म का मूल्य और शान में अकेला समझा जाता था।

जिस ओर सेठानी जी जातीं नौलखा हार देखनेवालों की भीड़ लग जाती। नौकर-चाकर लोगों को रास्ते से हटाकर आगे बढ़ने के लिए रास्ता बना पाते। स्त्रियाँ घूँघट उठा-उठाकर सतृष्ण नेत्रों से हार की ओर देखतीं। काश! उन्हें भी ऐसा हार मिल पाता।

एक समय सेठ-सेठानी और राजा-रानी का भी आमना-सामना हुआ। सेठ ने सेठानी से कहा, "यही राजा-रानी हैं।"

सेठानी ने देखा, भौंचक्की-सी रह गई। उसे सेठजी के कहने पर विश्वास नहीं हो रहा था। जिसके सिर पर हीरे-मोतियों से जड़ा मुकुट न हो, वज़ीर-अहलकार साथ न हों, नौकर-चाकर न हों, रथ-पालकी न हो, उसे राजा कौन कहे भला, और क्यों कहे ? और रानी ! किसान की स्त्री-जैसी। सादे कपड़े पहने हुए, गहनों के नाम पर एक छल्ला तक नहीं ! ऐसी भी भला रानी हो सकती है ? सेठानी अवाक् रह गई। उसके मुँह से बरबस अवज्ञा-भरे स्वर में निकल पड़ा, "यही रानी है ?"

रानी ने सेठानी को आँखें फाड़-फाड़कर अपनी ओर ताकते देखा और 'क्या यही राजा-रानी हैं ?' यह शब्द भी सुने। किन्तु देखे को अनदेखा और सुने को अनसुना करके रानी सेठानी से और राजा सेठ से बातें करने लगे। किन्तु बातचीत में भी सेठानी रानी के प्रति उपेक्षा का ही बर्ताव करती रही। बातों ही बातों में सेठानी ने अपने 'नौलखे हार' की खूब प्रशंसा की। कुछ देर बाद यह भेंट समाप्त हुई।

दिन ढला। लोग अपने-अपने घर लौटने लगे। राजा-रानी भी अपने झोंपड़े में पहुँचे। खा-पीकर सो गये।

दूसरे दिन जब राजा राज-काज से लौटकर झोंपड़े में आया तो उसने रानी को उदास पाया और यह उदासी दिनों-दिन बढ़ती ही गई। रानी राजा से कुछ न कहती, परन्तु भीतर-ही-भीतर उसे कोई दुःख घुन की तरह खाए जा रहा था।

"मेरी प्यारी रानी !" एक दिन राजा ने रानी से पूछा, "मैं कई दिनों से देख रहा हूँ कि तुम बेचैन हो। आखिर ऐसी कौन-सी बात है, जिसे तुम मुझसे कहना नहीं चाहती हो ?"

पहले तो कुछ क्षण रानी चुप रही, फिर आवेश में आकर कहने लगी, "यहाँ कौन रानी है और कौन राजा ? दिन-भर मर-खपकर कहीं दो जून रोटी मिलती है। फिर भी हम अपने को राजा और रानी कहते हैं। इससे बढ़कर विचित्र

बात दूसरी हो सकती है क्या ? इससे तो यही अच्छा होता कि हम साधारण किसान होते। अपनी नींद सोते और अपनी नींद जागते। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। यहाँ हम मरने-खपने के लिए, राज-काज की चिन्ता के लिए तो राजा-रानी हैं, पर उससे हमें मिलता क्या है ? रस्सियाँ बनाओ और बेचो, यह भी कोई काम में काम है ? न ढंग का घर है और न ढंग के कपड़े। पेट भरने को तो जैसे कौवे, कुत्ते पेट भरते हैं, हम भी भर लेते हैं। जब खाने-पहनने का यह हाल है तो गहनों की तो बात ही दूर रही। एक चाँदी का छल्ला तक तो कभी देखा नहीं। बरतन माँजती हूँ, कपड़े धोती हूँ, पानी खींचती हूँ, और फिर भी रानी हूँ ! अगर मैं रानी हूँ तो फिर नौकरानी कैसी होती है ?"

राजा की समझ में कुछ नहीं आया कि बात क्या है ? वह सोचने लगा—'रानी एकदम इतनी कैसे बदल गई ? राजभोगों को हमने किसी के रोकने पर तो छोड़ा नहीं था। समझ-बूझकर हमने भोग के बदले त्याग और श्रम को अपनाया है। फिर आज रानी को क्या हो गया, जो त्याग के बदले भोग की ओर झुकी। आज तक हम जिस जीवन में स्वर्गका-सा सुख अनुभव करते रहे, आज रानी को वह इतना नीरस क्यों लगने लगा ?' पर राजा की समझ में कुछ नहीं आया, कुछ नहीं आया।

"साफ-साफ कहो, मेहतो ! बात क्या है ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है कि तुम क्या कह रही हो ?" राजा ने कहा।

छूटते ही रानी ने उत्तर दिया, "मुझे नौलखा हार चाहिए। जब तक मैं नौलखा हार न पहन लूँगी, चैन से नहीं रह सकूँगी।"

राजा ने समझाया, "मेहतो, भोग के बदले त्याग का जीवन तो हमने अपने आप ही स्वीकार किया है और वह भी समझ-बूझकर। और फिर एक हार के लिए तुम अब तक की सारी जीवन-साधना को ताक पर रख देना चाहती हो। आज तुमको लगता है कि तुम रानी नहीं हो। परन्तु प्रजा से पूछो कि क्या तुम

उसके मन की रानी हो कि नहीं। आज जो तुम कच्चे घड़े और कच्चे सूत की डोरी से पानी खींच पाती हो वह सब इस पुण्य का ही प्रताप है। और फिर मैं पूछता हूँ कि हार को पहनकर कौन-सा पुण्य प्राप्त होगा ? क्या इसे पहनने से तुम्हारा यश बढ़ेगा अथवा स्वर्ग मिलेगा ?"

"किसने देखा है स्वर्ग ! रही बात यश की, सो वह मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो वह चीज़ चाहिए जिससे मेरे मन को शान्ति मिले।"

राजा ने फिर समझाया, "इसके लिए प्रजा पर और कर लगाना पड़ेगा। जरा सोचो तो प्रजा क्या कहेगी ? आज मेरे और तुम्हारे प्रति प्रजा की जो श्रद्धा है, वह इस स्वार्थपूर्ण साँग के कारण जाती रहेगी।"

रानी अपनी बात से टस-से-मस न हुई। त्रिया-हठ ही जो ठहरा और तिस पर भी स्त्री थी रानी। त्रिया-हठ और राज-हठ दोनों मिल जो गये थे। रानी ने राजा की बात सुनी-अनसुनी कर दी।

विवश हो राजा ने प्रजा पर कर लगाया और नौ लाख मोहरें एकत्र कर लीं।

हीरे-मोतियों का जड़ाऊ नौलखा हार तैयार होने लगा। नौलखा हार पा लेने की प्रसन्नता में जैसे-जैसे रानी का मन खिलने लगा, वैसे-वैसे राजा का सन्ताप बढ़ने लगा। उस धर्म-भीरु राजा को प्रजा पर कर लगाना अत्यन्त अनुचित और अधार्मिक लग रहा था। पर बिना कर लगाए दूसरा उपाय भी तो नहीं था। रस्सियाँ बनाकर और बेचकर तो दस जन्म में भी नौलखा हार न बन पाता।

आखिर हार तैयार होकर आ गया। रानी ने हार पहना और शीशे के सामने जा खड़ी हुई। उसकी कल्पना का हार आज उसके गले का हार बन गया था। प्रसन्नता से उसका रोम-रोम खिल उठा। वह फूली नहीं समा रही थी। उसने मन-ही-मन सोचा—'अब कोई सेठानी उसके साथ उपेक्षापूर्ण बर्ताव नहीं करेगी।'

आज वह सोलह शृंगार करके राजा के सामने होना चाहती थी। शीशे के

सामने बैठी वह कभी बाल सँवारती, कभी काजल लगाती। आज उसका शृंगार पूरा होने में नहीं आ रहा था।

उधर दोपहर तक राज-काज से निबटकर राजा अपने झोंपड़े की ओर चला। आज उसे बुखार हो गया था। चेहरा तमतमा रहा था। पाँव लड़खड़ा रहे थे। वह गिरता-पड़ता झोंपड़े में पहुँचा और धम से खाट पर लेट गया।

रानी उस समय भी शीशे के सामने बैठी बाल सँवार रही थी। उसे राजा के आने का पता तक न चला।

ज्वर के कारण राजा को बड़े जोर की प्यास लग रही थी। उसका गला सूख गया था। मुँह से बोल भी नहीं निकल रहा था। उसने लड़खड़ाती जबान से पानी माँगा, तब कहीं रानी का ध्यान टूटा और वह सिर घुमाकर पीछे की ओर देखने लगी। राजा को चारपाई पर लेटे देखकर पहले तो वह अपने उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण लज्जित हुई, फिर घबराकर राजा के पास जा बैठी और माथे पर हाथ फेरने लगी। माथा जले तवे-सा गर्म हो रहा था। घबराहट ने चिन्ता का रूप लिया। राजा को पानी पिलाना वह भूल ही गई।

राजा ने दोबारा पानी माँगा तो वह घड़े की ओर भागी। परन्तु घड़ा तो खाली पड़ा था। रानी तो सुबह से साज-शृंगार में मग्न थी। पानी कौन लाता?

वह उस कच्चे घड़े और सूत की डोरी को उठाकर किले की दीवार पर पहुँची। नीचे स्वच्छ निर्मल जल का नाला बह रहा था। उसने घड़ा नीचे सरकाना शुरू किया।

पर हाय! यह क्या? घड़ा पानी में घुल गया और डोरी टूट गई। रानी उल्टे पाँव झोंपड़े में पहुँची। राजा अब भी 'पानी-पानी' पुकार रहा था।

रानी ने रुआँसी-सी होकर जवाब दिया, "पानी नहीं है, मैं कहाँ से लाऊँ? घड़ा घुल गया और डोरी टूट गई।"

वह पानी लाने का दूसरा कोई उपाय सोच रही थी, किन्तु उसे कुछ नहीं

सूझ रहा था कि वह क्या करे, पानी कैसे लाए ? उधर राजा पानी के बिना बेहाल था।

रानी को राजा की कही बात याद आ गई। उसने अपना नौलखा हार उतार फेंका। दूसरे गहने भी एक-एक करके उतार फेंके। वह दूसरा बर्तन और रस्सी लेकर फिर किले की दीवार पर पहुँची और पानी खींचने लगी। किन्तु जब तक वह पानी लेकर झोंपड़े के भीतर पहुँची, राजा दम तोड़ चुका था। उसके होंठ अब भी पानी के लिए खुले-के-खुले पड़े थे।

रानी ने देखा तो चीख मारकर गिर पड़ी। उसका सौभाग्य-सूर्य अस्त हो चुका था।

कहते हैं, अपने मूर्खतापूर्ण हठ पर पश्चाताप करती हुई रानी मेहतो पागल होकर मर गई।

राजा बाणभट्ट के जीवन के अन्त के साथ इस पहाड़ी राज्य की सुख-समृद्धि का भी अन्त हो गया।

कांगड़ा के बूढ़े लोग इस प्रदेश की दीन-हीन दशा का कारण रानी मेहतो को ही बताते हैं, जिसने नौलखे हार के लिए राज्य की सम्पत्ति नष्ट कर दी और परम धार्मिक बाणभट्ट को सन्ताप की आग में जलाकर असमय ही मौत के मुँह में ढकेल दिया।

2

भीख और शाह मस्तअली

शाह मस्तअली पहुँचे हुए फकीर थे। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, दोनों की उन पर अटूट श्रद्धा थी। दोनों उन्हें मानते थे। शाहजी जो कह देते, सच हो जाता। उनका आशीर्वाद कभी बेकार नहीं जाता।

भीखू इन्हीं शाह मस्तअली का चेला था। उसका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन से ही उसका झुकाव भक्ति-भाव की ओर था। शाह-जैसे पहुँचे हुए फकीर को गुरु के रूप में पाकर भीखू अपने को धन्य समझने लगा।

भीखू की दशा बिलकुल जड़ भरत जैसी थी। यह दृश्य जगत् जैसे उसके लिए कुछ था ही नहीं। शाहजी की सेवा से यदि कुछ अवकाश मिलता तो प्रभु-भजन। यही उसकी दिनचर्या थी।

धीरे-धीरे शाहजी के प्रति श्रद्धा रखनेवाले लोग भीखू पर भी उतनी ही श्रद्धा रखने लगे। पर भीखू को इन बातों से कुछ मतलब न था। उसे तो

अपने मान-अपमान, सुख-दुःख का भान ही नहीं होता। लोग आपस में चर्चा करते--"यह तो जल में कमल की तरह है।" कोई कहता--"पूरा विदेह है।" कुछ का कहना था--"गीता का स्थितप्रज्ञ देखना हो तो भीखू को देख लो।" कइयों का विचार था--"भीखू अपने गुरु से भी बढ़ गया। 'गुरु गुड़ और चेला चीनी' वाली बात हो गई।"

एक दिन गाँव में भीखू भीख माँगने जा रहा था। रास्ते में उसे कन्धे पर अर्थी उठाए कुछ लोग मिले।

भीखू ने उनसे पूछा, "यह क्या उठाए जा रहे हो ?"

उत्तर मिला, "मुर्दा ! दाह-संस्कार करने जा रहे हैं।"

भीखू की समझ में कुछ नहीं आया। उसने फिर पूछा, "ठीक से समझाओ, बात क्या है ?"

लोगों ने फिर कहा, "यह मर गया है।"

"अच्छा तो यह बताओ कि इसका मर क्या गया है ?"

बेचारे गाँव के लोग इस गूढ़ दार्शनिक प्रश्न का क्या उत्तर देते ?

आखिर भीखू के कहने पर उन्होंने अर्थी धरती पर रख दी। भीखू ने कफ़न उठाकर देखा--देखकर कहने लगा, "सब ठीक तो है। हाथ-पाँव, नाक, आँख सभी कुछ तो मौजूद है। है क्या नहीं जो मर गया ?"

लोगों ने अपनी सारी समझ बटोरकर कहा, "यह बोलता नहीं है, हिलता-डुलता नहीं है।"

"ओह ! यह बात है। अच्छा देखता हूँ। यह बोलता कैसे नहीं ?"

कहते हैं भीखू ने उस मुर्दे को हिलाया-डुलाया और कहा, "उठो, नहीं तो ये लोग तुम्हें जला डालेंगे।"

मुर्दा जी उठा।

सगे-सम्बन्धियों और पास-पड़ोस के लोगों का रोना हँसी में बदल गया।

पलों, घड़ियों में यह खबर आस-पास के सारे गाँवों में पहुँच गई कि भीखू ने मुर्दे को जीवित कर दिया।

शाह मस्तअली को भी पता लगा। बात की सच्चाई जानने के लिए वह घटना-स्थल पर जा पहुँचे। देखा, बात सच्ची है। फिर क्या था! उनके क्रोध का ठिकाना न रहा।

"भीखू की यह मजाल! वह अल्ला ताला का शरीक बनना चाहता है। मैंने क्या उसे इसीलिए इल्म सिखाया था कि वह कुदरत के उसूलों के खिलाफ़ काम करे? उसने ऐसा किया क्यों?"

शाहजी ने भीखू को जान से मार डालने का निश्चय किया और वह भीखू का पीछा करने दौड़ पड़े।

उधर भीखू को पता लग गया कि शाह साहब सख्त नाराज़ हैं कि उसने ऐसा किया क्यों? वह बहुत लज्जित हुआ, पर अब क्या हो सकता था?

भीखू शर्म के मारे अपना मुँह शाह साहब को दिखाना नहीं चाहता था, इसीलिए भाग खड़ा हुआ। अब आगे भीखू था और पीछे शाह साहब। भीखू दौड़ता-दौड़ता बारह मील निकल गया पर शाह साहब ने पीछा करना नहीं छोड़ा। अब भीखू से अधिक दौड़ा नहीं जाता था। प्यास और थकान से उसका बुरा हाल था। उसके लिए अब दो कदम भाग सकना भी असम्भव हो रहा था। उधर शाह साहब बिलकुल पास पहुँच चुके थे। कुछ कदमों का ही फासला था। अब भीखू बेचारा क्या करता?

उसने खड़े होकर धरती माता से प्रार्थना की, "धरती माता, मुझे आश्रय दो।"

उसके मुँह से यह शब्द निकलने थे कि जिस स्थान पर वह खड़ा था, वहाँ की धरती फट गई। भीखू उसमें समा गया। धरती माता ने उसे अपनी

गोद में आश्रय दे दिया। शाह साहब उसे जो दण्ड देना चाहते थे, वह उसने अपने आप ले लिया।

भीखू क्योंकि शाहजी का चेला था और शाहजी थे मुसलमान, इसलिए हिन्दू-मुस्लिम दोनों का समान श्रद्धापात्र होते हुए भी, मुसलमानों ने उसे अधिक अपनाया। दफनाने और जलाने पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ होता, किन्तु शव तो था ही नहीं। उसके समाधि-स्थल पर मजार बन गया और भीखू अब भीखे शाह के नाम से पूजा जाने लगा। इस स्थान का नाम भी 'भीखे शाह' पड़ गया।

तब से इस स्थान पर प्रति वर्ष ज्येष्ठ गते २ से लेकर १० तक पूरे आठ दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। इस मेले में विशेष रूप से पशुओं का व्यापार होता है। यह स्थान कांगड़ा की पालमपुर तहसील में भवारना नामक कस्बे के पास है।

---

1. कुछ वर्ष पश्चात शाह मस्तअली भी इस फानी दुनिया को छोड़कर चले गए। उनका मजार अब तक जयसिंहपुर नामक कस्बे में बना हुआ है। उस मजार पर भी 1947 तक, जब तक वहाँ मुसलमान रहे, मेला लगता था। अब यह मेला लगना बन्द हो गया है।

अपने जीवन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के समान श्रद्धापात्र शाह मस्तअली, काल-चक्र से अब केवल मुसलमानों के रह गये। अब हिन्दू इस मजार को अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं, अपितु इस मजार के अस्तित्व को वे अपने लिए लज्जाजनक भी समझते हैं।

और एक बात और मजे की। मुसलमानों के चले जाने के बाद यहाँ के लोगों को भीखे शाह का मुसलमानी नाम बिलकुल नहीं भाया। अब उन्होंने उसका नाम बदल दिया है। वहाँ मेला अब भी लगता है। लोग उसी तरह भारी संख्या में एकत्र होते हैं।

3

वीर गूगा चौहान

राजा देवराज चौहान की दो रानियाँ थीं। ये दोनों सगी बहनें थीं। एक का नाम था बचला और दूसरी का कचला। इन दोनों के ही कोई सन्तान न थी। सन्तान के अभाव से उनका जीवन दुःखी था। दवा-दारू, जादू-टोने सभी कुछ आजमा लिया पर सन्तान का मुँह न देख सकीं। उनकी कोख खाली की खाली ही रही। इस अभाव में उन्हें राजभोग फीके लगते और चेहरों पर उदासी बनी रहती। अब वे मन्दिरों में जाकर देवताओं की पूजा करतीं, भूखों को भोजन खिलातीं, ब्राह्मणों को दान देतीं। सोचती थीं कि शायद किसी के आशीर्वाद से, किसी के वरदान से उनकी कोख हरी-भरी हो जाए। आशा की डोरी आसानी से टूटती भी तो नहीं।

पास ही के जंगल में महात्मा सुर्खनाथ का आश्रम था। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली थी। रानियों को भी पता लगा। बचला ने निश्चय किया महात्मा सुर्खनाथ से पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद लेने का।

बहुमूल्य भेंट लेकर वह सुर्खनाथ के आश्रम में पहुँची। अपनी व्यथा की कथा कह सुनाई। महात्मा सुर्खनाथ का हृदय दया से पसीज गया। उन्होंने पल-भर आँखें मूँदकर मन-ही-मन कुछ सोचा। फिर बचला से कहा, "तुम आज जाओ, फिर किसी दिन आना। भगवान् ने चाहा तो तुम्हारे अवश्य सन्तान होगी। भगवान् बड़ा दयालु है। अवश्य कृपा करेगा। फिर आओगी तो मैं तुम्हें एक फल दूँगा। उस फल के खाने से तुम्हारी गोद अवश्य भरेगी।"

बचला सुर्खनाथ के तप से चमक रहे चेहरे से बहुत प्रभावित हुई। उसे आशा बँध गई कि इस तपस्वी की वाणी झूठी नहीं होगी अतः वह खुशी-खुशी महलों में लौट आई और सारी बात बहन कचला को कह सुनाई।

कचला ने सोचा—'क्यों न मैं बचला के कपड़े पहनकर इससे पहले ही सुर्खनाथ के आश्रम में चली जाऊँ और वह सन्तान देने वाला फल लाकर खालूँ। नहीं तो बचला के सन्तान हो गई और वह निपूती रही, तो उसकी कोई बात भी नहीं पूछेगा और बचला का खूब आदर-सत्कार होगा।'

अपने इस निश्चय के अनुसार बचला के कपड़े पहनकर वह उससे पहले ही महात्मा सुर्खनाथ के पास जा पहुँची और फल माँगा। इस प्रकार छल से बचला के लिए रखे फल को कचला उड़ा ले आई।

दूसरे ही दिन बचला भी सुर्खनाथ के आश्रम में पहुँची और आने का उद्देश्य प्रकट किया। सुर्खनाथ ने उसे बताया, "फल तो कल एक स्त्री ले गई। वह अपना नाम बचला बताती थी।"

बचला को समझते देर न लगी कि वह कौन हो सकती है। उसने सुर्खनाथजी को बताया, "वह शायद मेरी सगी बहन कचला होगी। हम दोनों बहनें एक ही को ब्याही गई हैं।"

सुर्खनाथजी ने उसे भी एक फल दिया और घर जाकर खा लेने को कहा। वह भी खुशी-खुशी घर लौटी। उसने वह फल आधा तो स्वयं खा लिया

और आधा घोड़ी को खिला दिया। ईश्वर की करनी, समय पाकर उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गूगा। घोड़ी के भी एक सुन्दर बछेड़ा हुआ। कचला के हुई लड़की। लड़की का नाम गूगरी रखा गया।

गूगा और घोड़ी के बच्चे में बहुत प्रेम था। गूगा बचपन से उसकी पीठ पर सवारी करता। दोनों को एक दूसरे के बिना चैन नहीं पड़ता था।

गूगा जवान हुआ। वह बहुत बलशाली और रूपवान था। कुछ घुमन्तू लोगों ने उसे बताया—'अमुक देश में एक बड़ी रूपवती युवती है। वह आपके ही योग्य है। आप उसे पाने का अवश्य प्रयत्न करें।'

गूगा ने निश्चय किया कि मैं उस सुन्दरी को अवश्य ब्याहूँगा।

और वह बचपन के साथी उस घोड़े पर सवार होकर घर से निकल पड़ा।

बड़े परिश्रम और खोज के बाद गूगा ने उसे ढूँढ़ लिया। यह जादू का देश था। यहाँ की स्त्रियाँ जादू जानती थीं। यह सुन्दरी भी जादूगरनी थी। वह गूगा को दिन में मेंढ़ा बना देती और रात को वह अपना असली रूप प्राप्त कर लेता।

इस स्त्री के पास रहते गूगा को वर्षों बीत गये। अपने राज-काज की तो उसे सुध ही नहीं रह गई। इसी का नाम तो जादू है।

उधर बूढ़ा देवराज मर चुका था। गूगा वर्षों से गायब था। शत्रुओं को इससे अच्छा अवसर क्या मिलता? राज्य में अव्यवस्था, अराजकता फैली। शत्रु सिर उठाने लगे। लोग तरह-तरह के छल-कपट करके इस राज को हथियाने का प्रयत्न करने लगे।

एक कपटी ने अपने को गूगा बताकर सारे राज्य को हड़पना चाहा। वह घोड़े पर चढ़कर आया और किले के द्वारपाल को कहने लगा, "द्वार खोलो, मैं गूगा हूँ। परदेश से लौटा हूँ।"

यह द्वारपाल बड़ा पुराना था। जब से गूगा राज्य छोड़कर गया था, इसकी आँखें फूट गई थीं। किसी महात्मा ने उसे कहा था कि जब गूगा लौटकर

आएगा, तेरी आँखें ठीक हो जाएँगी। द्वारपाल को इस बात पर विश्वास था। उसने उस घुड़सवार के कहने पर किले के कपाट खोलने से साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा, "तुम गूगा नहीं हो। जिस दिन गूगा लौटकर आएगा, मेरी आँखें ठीक हो जाएँगी।"

छली का यह छल बेकार गया। अब वह राज्य में तरह-तरह के उपद्रव करने लगा। अब तक गूगरी जिस किसी तरह राज-काज को सँभाले हुए थी, परन्तु इस दुष्ट की जालसाजियों से वह परेशान हो उठी।

उसने निश्चय किया--'मैं जैसे भी हो, गूगा की खोज कराऊँगी।'

उसने एक पत्र लिखा और राज्य के एक विश्वासी और चतुर ब्राह्मण को गूगा के पास जाने के लिए तैयार किया। ब्राह्मण तैयार हो गया।

कठिन प्रयत्न के बाद ब्राह्मण ने गूगा को खोज निकाला। गूगरी का लिखा पत्र ब्राह्मण ने गूगा तक पहुँचा दिया।

पत्र पढ़ा तो गूगा जैसे नींद से चौंक पड़ा हो। उसने निश्चय किया--'मैं अब अपने राज्य को लौटूँगा और शत्रुओं को नीचा दिखाऊँगा।'

पर जादूगरों के इस देश से भाग निकलना भी आसान न था। यह उलझन इस चतुर ब्राह्मण ने सुलझा दी। उसने अपने मंत्रबल से गूगा को उस जादू की कैद से निकाल लिया। अब गूगा ने अपना घोड़ा सँभाला। वह बेचारा तब से वहीं था और बूढ़ा भी हो चला था। गूगा, घोड़ा और ब्राह्मण तीनों अपने राज्य को लौट आए।

गूगा किले के दरवाज़े पर पहुँचा ही था कि वर्षों से अंधे द्वारपाल की आँखें चमक उठीं। उनमें ज्योति लौट आई। गूगा ने एक-एक करके अपने सारे शत्रुओं को परास्त किया और राज्य की व्यवस्था ठीक की। आखिर एक दिन, युद्ध करते-करते उसका सिर धड़ से अलग हो गया किन्तु वह केवल धड़ मात्र से युद्ध

करता हुआ वह कुछ देर शत्रुओं को मारता-काटता रहा।

यह पराक्रमी वीर मृत्यु के उपरान्त देवता की तरह पूजा जाने लगा। आज भी कांगड़ा में विशेष रूप से और सारे पंजाब में साधारणतया उसकी पूजा होती है।[1] गूगा की निर्वाण-तिथि भादों कृष्ण पक्ष की नवमी है।

---

1. छिन्न मस्तक, घोड़े पर सवार, शत्रुओं से जूझते हुए गूगा की मूर्तियाँ अब भी कांगड़ा में देखी जा सकती हैं।

गूगा कांगड़ा के जनजीवन पर छाया हुआ है। कई स्थानों पर उसके मन्दिर हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध ढाला नामक स्थान का मन्दिर है। यह ज्वालामुखी से देहरा जाने वाली सड़क पर पड़ता है।

गूगा के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहाँ के लोगों की धारणा है कि साँप का ज़हर गूगा के स्थान की मिट्टी के स्पर्श मात्र से दूर हो जाता है। और कितने ही लोग अब भी साँप डस जाने पर यही उपचार करते पाए जाते हैं। अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिए भी गूगा से मनौतियाँ मानी जाती हैं और भेंट चढ़ाई जाती है।

एक और बात का यहाँ लिखना अप्रासंगिक न होगा। वह यह कि कांगड़ा में विभिन्न ग्राममण्डलों में कुछ लोगों को गूगा के नाम पर भादों कृष्ण प्रतिपदा से अष्टमी तक गूगा की जीवन-गाथा, गा-गाकर सुनाने और उसके बदले भेंट-पूजा ग्रहण करने का अधिकार मिला हुआ है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र सभी वर्णों के लोगों को प्राप्त है।

ये लोग भोजपत्र का बना एक बहुत बड़ा छत्र लेकर चलते हैं। इस छत्र को घर से चलने और वापस लौट आने के बीच के समय में धरती पर रखना मना है। ये लोग भिखमंगे नहीं होते, केवल कर्तव्य के नाते द्वार-द्वार जाकर गूगा की जीवन-गाथा गा-गाकर सुनाते हैं। इस काव्य के कई भाग इतने मार्मिक बन पाए हैं कि सुननेवाले रो पड़ते हैं। गृहस्थ इन लोगों का बड़ा मान करते हैं। गूगा की पूजा के लिए धूप-दीप, दक्षिणा, मौली तथा अन्न भेंट किया जाता है। जन्माष्टमी के बाद की नवमी गूगा की निधन-तिथि है। ये लोग उस दिन विधिवत् गूगा का श्राद्ध करते हैं। यह कार्य प्रति वर्ष होता है।

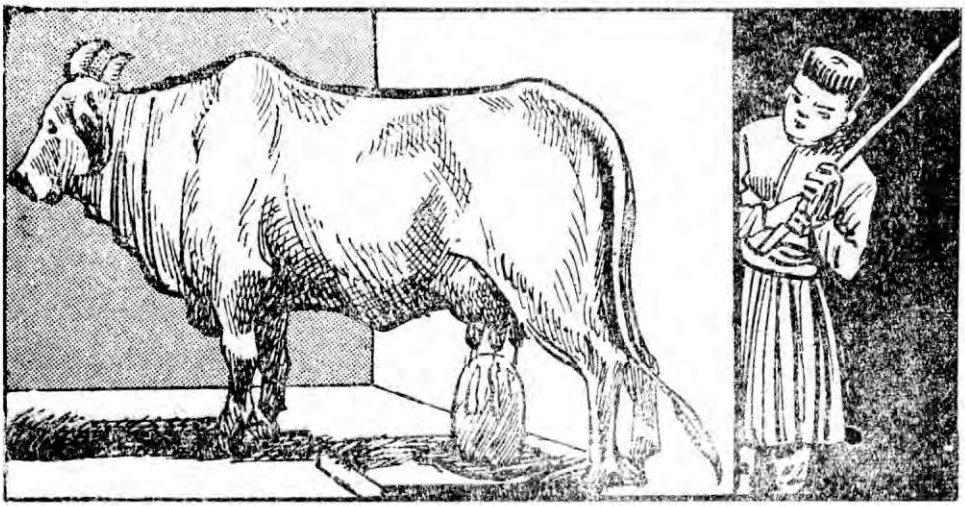

4

कुञ्जेश्वर महादेव

व्यास नदी के किनारे लम्बा गाँव के पास, एक ऊँचे टीले पर कुञ्जेश्वर महादेव का मन्दिर है। इस महादेव के नाम पर ही इस स्थान का नाम कुंजद्वार पड़ गया है। यहाँ के लोगों को धारणा है कि हरद्वार जितना महात्म्य ही इस कुंजद्वार का भी है। इस इलाके के लोग जो धनाभाव से अपने पुरखाओं के फूल हरद्वार में गंगा में प्रवाहित नहीं कर पाते, यहीं प्रवाहित कर देते हैं। शिवरात्रि के दिन यहाँ बड़ा मेला लगता है और हजारों की संख्या में लोग जमा होते हैं। यह मेला तीन-चार दिन रहता है।

यह मन्दिर कब और किसने बनाया, इसका तो अब कुछ पता नहीं चलता, परन्तु इसके सम्बन्ध में जो एक कथा प्रचलित है उससे जान पड़ता है कि मन्दिर काफी पहले बना होगा।

जिस समय की हम कथा सुना रहे हैं, कहते हैं उस समय व्यास नदी का

प्रवाह इस प्रकार बहता था कि यह मन्दिरवाला टीला द्वीप की तरह बीचों-बीच खड़ा था। अब प्रवाह मन्दिर के केवल एक ओर को काफी हटकर बहता है।

व्यास के उस पार एक ग्वाला गाँवभर की गाएं चराया करता था। उसकी गायों में से एक गाय प्रतिदिन दोपहर को घंटे-डेढ़ घंटे के लिए खो जाती और फिर अपने-आप ही आ भी जाती। ग्वाला चकित था कि आखिर वह प्रतिदिन चली कहाँ जाती है और फिर कैसे आ जाती है ? पर उसकी समझ में कुछ नहीं आता था।

एक दिन उसने निश्चय किया कि वह उस गाय पर नजर रखेगा और देखेगा कि वह कहाँ जाती है ?

आज वह एकटक उसी की ओर देख रहा था। जब सूर्य भगवान् सिर पर आ पहुंचे तो गाय व्यास के प्रवाह में घुस पड़ी। पहले वह पानी में चलती रही किन्तु जब गहरा पानी आ गया तो तैरने लगी।

ग्वाले ने भी पीछा किया। वह भी पानी में कूद पड़ा और तैरने लगा। गाय टीलेवाले किनारे पर पहुंची और मन्दिर की ओर चढ़ने लगी। ग्वाला भी पीछे-पीछे आ रहा था। गाय मन्दिर में घुस गई और शिवलिंग के पास जाकर इस प्रकार खड़ी हो गई कि उसके थन शिवलिंग के ऊपर आ गए। फिर उसके थनों से दूध की धारा बह निकली और शिवलिंग का अभिषेक करने लगी।

अब तक ग्वाला भी मन्दिर के भीतर पहुंच चुका था। उसकी साथिन लाठी उसके हाथ में थी। उसने इस प्रकार दूध निकलते देखा तो गाय की शैतानी पर खीझ उठा। खिलाए-पिलाए कोई, दूध मिले किसी दूसरे को। उसने आव देखा न ताव, लाठी गाय पर दे मारी।

गाय को पीछा करते ग्वाले की बिलकुल खबर नहीं थी। अचानक इस लाठी-प्रहार से वह बिदक उठी और उसका एक खुर शिवलिंग पर जा पड़ा। गाय के इस खुर का निशान शिवलिंग पर अब भी देखा जा सकता है।

ग्वाला उसे खदेड़ता हुआ वापस ले आया। उसके बाद वह गाय कभी नहीं खोई।

मन्दिर का पुजारी श्रद्धालु भक्तों को यह कथा बड़े मनोयोग के साथ सुनाता है और इसकी सच्चाई के प्रमाण के लिए शिवलिंग पर बने खुर के उस स्पष्ट निशान को दिखाता है।

लोगों की धारणा है कि जब दोबारा व्यास नदी का प्रवाह मन्दिर के नीचे की सीढ़ियों को छू लेगा तो इस तीर्थ की महिमा हरद्वार जितनी ही हो जाएगी।

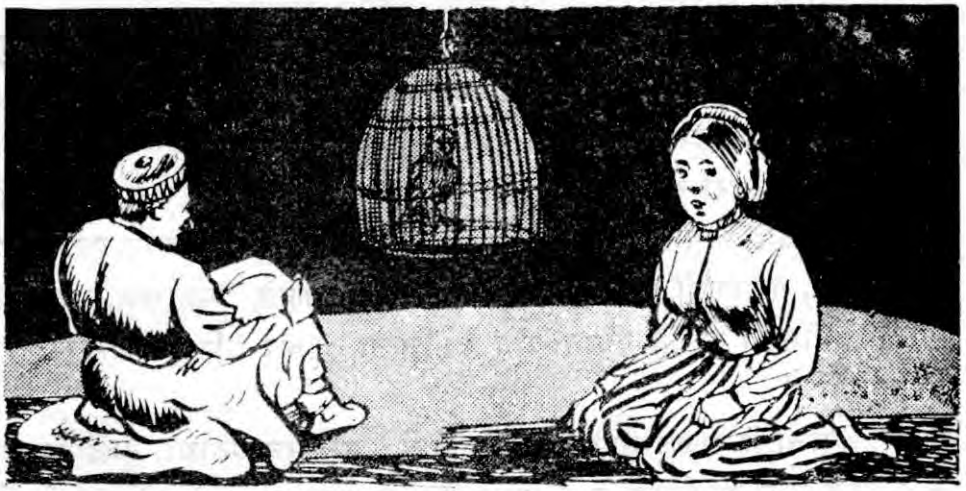

5

एक थी राजा की लड़की

एक थी राजा की लड़की और एक थी वजीर की। दोनों पण्डितजी के पास पढ़ने जातीं। राजा की लड़की प्रतिदिन पण्डितजी को सोने की मोहर देती, वजीर की लड़की चाँदी की। जब पढ़ने जातीं तो दोनों पण्डितजी को प्रणाम करतीं। पण्डितजी आशीर्वाद देते। राजा की लड़की को वह कहते, "तुम्हें मुर्दा वर मिलेगा।"

वजीर की लड़की को कहते, "तुम्हें राजकुमार वर मिलेगा।"

दिन बीतते गये। लड़कियाँ जवान हुईं। अपना भला-बुरा समझने लगीं।

राजा की लड़की ने सोचा, 'पण्डितजी कहते हैं, मुझे मुर्दा वर मिलेगा।' वह इस चिन्ता में घुलने लगी। अब उसका मन पढ़ने में नहीं लगता। भूख भी नहीं लगती। मुँह पर उदासी छाई रहती। वह किसी से बात नहीं करती। सहेलियाँ उसे छेड़तीं, मज़ाक करतीं पर उसके होंठों पर कभी मुसकराहट न आती।

जब देखो---लटका हुआ उदास चेहरा। माँ होती तो भला उससे बेटी का दुःख कैसे छिपा रह सकता ? पर वह तो कब की स्वर्ग सिधार चुकी थी। राजा को राज-काज से ही छुट्टी न थी। फिर बेटी की सुध कौन लेता ?

राजकुमारी सूखकर काँटा हो गई। तब राजा को भी पता लगा। राजा ने सोचा---कोई बीमारी होगी। उसने वैद्य-हकीम बुलाए। वैद्य आते, हकीम आते, नब्ज देखते, पर किसी की समझ में न आता। सब कहते, "महाराज, राजकुमारी को कोई बीमारी नहीं है, चिन्ता-रोग है। चिन्ता दूर कर दीजिए। बीमारी भी दूर हो जाएगी।"

राजा ने राजकुमारी से पूछा, "बेटी ! सच-सच बताओ, तुम्हें क्या दुःख है ? किस बात की चिन्ता है ? किसी ने तुम्हें बुरा कहा हो, तो उसकी जीभ कटवा दूँ। बुरी नजर से देखा हो, तो उसकी आँखें निकलवा दूँ।"

राजकुमारी ने कहा, "पिताजी, न तो मुझे किसी ने बुरा ही कहा और न बुरी नजर ही से देखा है। परन्तु मेरे मन में एक बात का दुःख है। मैं जब पण्डित जी को प्रणाम करती हूँ तो वह कहते हैं---'तुम्हें मुर्दा वर मिलेगा'। मुझे यही चिन्ता दिन-रात खाए जा रही है।"

राजा ने सुना तो सन्न रह गया। पर उसने राजकुमारी को धीरज बँधाते हुए कहा, "बेटी, तुम इसकी चिन्ता न करो। मैं आज ही पण्डितजी को बुलाकर पूछूँगा कि वह ऐसा क्यों कहते हैं ?"

और राजा ने पण्डितजी को बुला भेजा।

पण्डितजी के आने पर राजा ने पूछा, "पण्डितजी, आप राजकुमारी को मुर्दा वर मिलने की बात क्यों कहते हैं ?"

पण्डितजी ने कहा, "महाराज, राजकुमारी के भाग्य में यही सब लिखा है। उसकी कुण्डली में ग्रह ही ऐसे पड़े हैं। आप सौ जतन कीजिए, भाग्य की इन रेखाओं को मिटा नहीं सकते। होनी तो होकर ही रहेगी।"

पण्डितजी की बातें सुनकर राजा का दिल बैठ गया। अब तक पण्डित जी ने कई भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सब सच निकली थीं। इसलिए राजा को पूरा विश्वास हो गया कि राजकुमारी को मुर्दा वर मिलेगा ही।

राजा ने फिर सोचा—'मेरा यह राज-पाट किस काम का, जबकि अपनी एकमात्र बेटी के दुःख को मैं दूर नहीं कर सकता। मैं इस राज-पाट को लात मारकर साधु-सन्तों की सेवा करूंगा। हो सकता है उनके आशीर्वाद से मेरी बेटी का दुर्भाग्य टल जाय।'

राजा ने वजीर को बुलाया और अपने मन की बात कह सुनाई। राज-काज उसे सौंपकर राजा इस ओर से निश्चिन्त हो गया और तब राजकुमारी को साथ लेकर साधु-सन्तों और तपस्वियों की खोज के लिए जंगल की ओर चल पड़ा।

दोनों कभी दो डग भी पैदल नहीं चले थे और यहाँ जंगलों के काँटों और कंकड़ों से भरे मार्ग पर चलना पड़ रहा था। जंगली जानवरों का डर अलग। दोनों के पैरों में छाले पड़ गये। दो डग चलते और बैठ जाते। भूख-प्यास से उनका बुरा हाल था।

चलते-चलते एक घने जंगल में पहुँचे। दोनों ही को बड़े जोर की प्यास लग रही थी पर पानी का कहीं नाम-निशान तक न था। अब तो एक डग चलना भी कठिन हो रहा था। थोड़ी दूर सामने उन्हें एक मकान-सा दिखाई दिया। इस घोर जंगल में मकान देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर वे तो इस समय प्यास से बेहाल हो रहे थे। इधर-उधर की बातें सोचने की किसे फुर्सत थी? सोचा—'मकान है तो यहाँ पानी भी अवश्य होगा।' इस आशा ने उनकी टाँगों में शक्ति भर दी और वे गिरते-पड़ते उस मकान तक पहुँचे।

पास जाकर देखा तो मकान का दरवाजा खुला था। राजकुमारी ने भीतर झाँककर देखा पर वहाँ कोई नहीं था। सोचा, भीतर कोई-न-कोई अवश्य होगा। वह अन्दर चली गई। उसके भीतर घुसते ही दरवाजा अपने आप बन्द हो

गया। अब न राजकुमारी बाहर निकल सकती थी और न राजा भीतर जा सकता था।

राजा भूखा-प्यासा तीन दिन बाहर पड़ा रहा। सोचता था कि शायद दरवाजा खुल जाए और मेरी प्यारी बेटी बाहर निकल सके। पर दरवाजा नहीं खुला। राजा बेचारा विवश था। क्या करता ? अन्त में विवश होकर वह वहाँ से चला गया।

राजकुमारी ने भी बाहर निकलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया किन्तु सब निष्फल। कोई रास्ता ही न था। किवाड़ ऐसे बन्द हो गए थे कि खुलते ही न थे। उस दिन तो वह इस आकस्मिक विपत्ति और पिता से बिछुड़ने के दुःख में पड़ी रही, पर आखिर इस तरह कब तक निभ सकती थी। दूसरे दिन उठकर उसने उस मकान की देखभाल शुरू की। देखा तो उसमें जरूरत की सभी चीजें भरी पड़ी थीं। भीतर ही स्वच्छ पानी का कुआँ भी था। एक-एक करके उसने सारे के सारे कमरे खोले। केवल एक छोटी-सी कोठरी देखनी रह गई।

जब राजकुमारी ने कोठरी के किवाड़ खोले तो सन्न रह गई। भीतर एक मुर्दा पड़ा था। उस पर उगी घास-फूस से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता था कि वह यहाँ कई महीनों से पड़ा हुआ है।

राजकुमारी को पण्डितजी की बात सच होती जान पड़ी। उसने सोचा—'अवश्य ही यह वह मुर्दा वर है जो मुझे मिलना है।'

वह प्रतिदिन प्रातः उठती, नहाती-धोती और मुर्दे के ऊपर उगी दूब का एक पौधा उखाड़कर अर्घ्य में रखती और सूर्य भगवान् को अर्पण कर देती। इसी प्रकार कई महीने बीत गये।

एक दिन अपने आप इस विचित्र मकान के वे किवाड़ खुल गये, जो राजकुमारी के पानी के लिए भीतर घुसते ही अपने आप बन्द हो गये थे। पर अब बेचारी राजकुमारी क्या कर सकती थी ? कहाँ जा सकती थी ?

एक दिन गर्मियों की दोपहर में एक तेली अपनी लड़की को साथ लिए वहाँ

आया। उसने किवाड़ खटखटाए। वे दोनों बाप-बेटी प्यास और थकान से बेहाल थे।

राजकुमारी ने उन्हें जी भर ठण्डा पानी पिलाया और कुछ खाने को भी दिया। राजकुमारी इस जंगल में इतने दिनों से अकेली ही रह रही थी। उसने सोचा कि अगर किसी तरह यह लड़की मुझे मिल जाए, तो यह सदा का अकेलापन दूर हो जाए। उसने तेली से अपना आशय कहा। उसने कुछ रुपयों के बदले अपनी लड़की को राजकुमारी के हवाले कर दिया।

राजकुमारी और तेली की लड़की एक साथ रहने लगीं। राजकुमारी अकेले रहने से उकता गई थी, वह तेली की लड़की को पाकर प्रसन्न थी, और तेली की लड़की राजकुमारी के व्यवहार से संतुष्ट थी।

तेली की लड़की ने देखा कि राजकुमारी प्रतिदिन नहा-धोकर उस छोटी कोठरी में पड़े मुर्दे पर उगी हुई दूब का एक पौधा उखाड़कर, सूर्य को अर्घ्य देती है। उसने राजकुमारी से कारण पूछा। राजकुमारी ने बताया कि जब दूब के सारे पौधे समाप्त हो जाएँगे तो यह मुर्दा जी उठेगा और तब वह मेरा पति होगा और मैं उसकी पत्नी।

तेली की लड़की ने देखा कि अब दूब का केवल एक पौधा बाकी रह गया है। दूसरे दिन वह राजा की लड़की से पहले ही जाग उठी और नहा-धोकर उस आखिरी पौधे को उखाड़कर सूर्य को अर्घ्य दे दिया। मुर्दा 'राम-राम' कहता हुआ जी उठा। क्योंकि उसने पहले तेली की लड़की को ही देखा था, इसलिए उसे अपनी पत्नी बना लिया।

राजकुमारी भी अपने नित्य नियम के अनुसार नहा-धोकर कोठरी के भीतर गई। पर वहाँ तो कुछ भी नहीं था। उसकी इतने दिनों की तपस्या और प्रतीक्षा व्यर्थ गई। जिसे रानी बनना था वह दासी बन गई और दासी रानी। वाह रे दुर्भाग्य!

अब राजकुमारी घर का सारा काम करती, उन दोनों के लिए खाना

बनाती। कपड़े धोती और जो भी कहते करती और रात को एक कोठरी में पड़ी रहती। इस निर्जन जंगल में कोई भी तो ऐसा नहीं था, जिसे वह अपनी राम-कहानी सुनाती। चुपचाप दिन बीतते गये।

एक दिन वह आदमी शहर को चला। उसने तेली की लड़की से कहा, "मैं शहर जा रहा हूँ। कहो, तुम्हारे लिए क्या लेता आऊँ ?"

उसने कहा, "मेरे लिए चूड़ियाँ, एक लाल दुपट्टा और मिठाई लेते आना।"

फिर उसने दासी राजकुमारी से पूछा, "कहो, तुम्हारे लिए क्या लेता आऊँ ?"

उसने कहा, "मेरे लिए एक मैना लेते आना।"

वह आदमी दोनों की मुँहमाँगी चीजें लेता आया।

तेली की लड़की ने चूड़ियाँ पहनीं, लाल दुपट्टा ओढ़ा और शीशे के सामने जा खड़ी हुई। वह फूली नहीं समा रही थी। उसने छककर मिठाई खाई। राजकुमारी के हाथ पर एक टुकड़ा भी न रखा। मिठाई खाती-खाती वह राजकुमारी के पास पहुँची। पूछने लगी, "अरी दासी, देख तो चूड़ियाँ पहनकर और इस दुपट्टे को ओढ़कर मैं कितनी सुन्दर लग रही हूँ। तूने तो कभी ऐसा दुपट्टा देखा भी न होगा और चूड़ियाँ देख न कितनी बढ़िया हैं !"

राजकुमारी मन ही मन हँसी। फिर कहने लगी, "आपको यह दुपट्टा और चूड़ियाँ बहुत सज रही हैं। दुपट्टा बहुत अच्छा है। चूड़ियाँ भी बहुत बढ़िया हैं।"

इसके बाद वह अपने पति के पास पहुंची और मटक-मटककर बातें करने लगी।

राजकुमारी दिनभर घर का काम करती। जब कुछ समय मिलता तो मैना को पढ़ाती रहती। धीरे-धीरे मैना पढ़ने लगी। उसने कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें याद कर लीं।

रात को खा-पीकर जब वह आदमी और तेली की लड़की सो जाते तो

राजकुमारी अपनी सारी आपबीती मैना को सुनाती और अपना जी हल्का करती।

परन्तु तेली की लड़की से राजकुमारी का यह सुख भी नहीं देखा गया। उसने अपने पति को भड़काना शुरू किया। कहने लगी, "देखो जी, इस निगोड़ी दासी को ! यह मैना क्या लाकर दी है कि अब दिनभर बैठी उसी को पढ़ाती रहती है। घर के काम-काज का तो उसे बिलकुल ध्यान ही नहीं है। सुना-अन-सुना कर जाती है। एक-एक काम के लिए दस-दस बार कहना पड़ता है।"

आदमी ने उसकी बात काटते हुए कहा, "नहीं तो, सभी काम ठीक समय पर हो जाते हैं। मैं तो समझता हूँ कि वह बड़ी ही चतुर है। देखो न, मैना को उसने कितनी अच्छी-अच्छी बातें सिखा दी हैं। कितना प्यारा पंछी है मैना भी ! जब उसके पिंजरे के पास जाता हूँ तो 'राम-राम' बोलती है। कितने दोहे उसने याद कर लिये हैं !"

तेली की लड़की की शिकायत बेकार गई। उसने मन-ही-मन सोचा—'पहले इस मैना को ही क्यों न बिल्ली के हवाले करूँ, जिसके कारण इसकी इतनी प्रशंसा हो रही है।'

उसने पति से कहा, "आज शाम को मैना को यहाँ मँगाना, मैं भी उसकी बोली सुनूँगी।"

शाम को मैना का पिंजरा उसके कमरे में लटका दिया गया। खाना खाकर पति-पत्नी दोनों उसकी बातें सुनने बैठे।

आदमी ने कहा, "मैना, तुमने क्या कुछ पढ़ा-सीखा, हमें भी तो कुछ सुनाओ।"

मैना ने कहा, "कहो तो एक सच्ची कहानी सुनाऊँ।"

दोनों ने एक साथ कहा, "हाँ-हाँ, ज़रूर सुनाओ।"

मैना सुनाने लगी, "एक थी राजा की लड़की और एक थी वजीर की। दोनों पण्डितजी के पास पढ़ने जातीं। राजा की लड़की प्रतिदिन पण्डितजी को

एक सोने की मोहर देती और वजीर की लड़की चाँदी की····· "

इस प्रकार राजकुमारी प्रतिदिन जो अपनी आपबीती सुनाती थी, वही उसने सुनानी आरम्भ की। जब सुनाते-सुनाते यहाँ पहुँची कि "····· इसी प्रकार दिन बीतते गये। जब मुर्दे पर दूब का केवल एक पौधा बाकी रह गया····· "

अब तेली की लड़की सकपकाई। यहाँ तो बना-बनाया खेल बिगड़ता जा रहा था। उसकी पोल खुलने वाली थी। वह पिंजरे की ओर झपटी कि सारी बात कहने से पहले ही मैना की गर्दन मरोड़ डाले। पर उसके दरवाजा खोलते ही मैना फुर्र करके उड़ गई और खिड़की पर जा बैठी। वह आदमी इस काण्ड को विस्मित-सा देखता रहा, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

मैना ने बाकी कहानी खिड़की पर बैठकर सुना दी और उड़कर एक टहनी पर जा बैठी।

अब उस आदमी को असली बात का पता लग गया। उसने दासी को, जो कि वास्तव में राजकुमारी थी और उसकी पत्नी बनने की अधिकारिणी थी, रानी बनाया और तेली की लड़की फिर दासी की दासी बन गई।

6

भाई का बदला

चन्द्र और भोला दो भाई थे। वे अभी छोटे ही थे कि उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई। दोनों किसी तरह मेहनत-मजूरी करके पेट पालते थे।

जाड़े की एक शाम की बात है कि दोनों भाई चूल्हे के पास बैठे आग ताप रहे थे। काम-काज के सम्बन्ध में बातें हो रही थीं।

चन्द्र ने कहा, "सुनो भोला, इस छोटे-से गाँव में रहकर अब गुज़र होना कठिन है। तुझे तो ढोर चराने का रोज का काम मिल गया है। किन्तु मुझे किसी दिन काम मिलता है तो किसी दिन नहीं। मेरा विचार है कि मैं कहीं दूसरी जगह जाकर काम तलाश करूँ।"

भोला को भी बात जँच गई। कहने लगा, "बात तो ठीक है। पर मेरा विचार है कि आप घर पर रहें और मैं बाहर जाऊँ।"

पर चन्द्र नहीं माना।

"भोला, तुम अभी छोटे हो। अभी तुम्हें मैं परदेश नहीं भेज सकता।" चन्द्र ने कहा। भोला चुप हो रहा।

दूसरे दिन भोला को समझा-बुझाकर चन्द्र घर से चल पड़ा। इससे पहले वह कभी गाँव से बाहर नहीं निकला था। किस जगह जाए इसका भी कुछ ठिकाना नहीं था। फिर भी वह नाक की सीध में चला जा रहा था। दोपहर और शाम भर के लिए वह रोटी घर से पका लाया था। चलते-चलते दोपहर हो गई और उसे भूख सताने लगी। कुछ दूर आगे चलकर एक कुआँ आया। उसकी जगत पर बैठकर उसने रोटी खाई और ठण्डा पानी पीकर जरा सुस्ताने के लिए बैठ गया। इतने में एक जाट वहाँ पानी भरने आया।

चन्द्र ने उससे पूछा, "यह रास्ता किस शहर को जाता है ?"

जाट ने भी पूछा, "तुम कहाँ जाना चाहते हो ?"

पर इस प्रश्न का उत्तर तो उसे भी मालूम नहीं था। उसने कहा, "यह तो मैं भी नहीं जानता। पर मैं जानकर करूँगा भी क्या ? मुझे तो काम चाहिए और वह चाहे कहीं भी मिल जाए।"

जाट ने कहा, "भई, एक नौकर तो मुझे भी चाहिए। तुम्हारा जी चाहे तो तुम्हीं रह जाओ।"

चन्द्र राजी हो गया। जाट उसे अपने घर ले गया। वहाँ जाकर तलब-तनख्वाह की बात हुई।

जाट ने कहा, "मैं तुम्हें पाँच रुपये महीना दूँगा। रोटी और कपड़ा अलग। परन्तु एक शर्त तुम्हें माननी पड़ेगी। वह यह कि अगर तुम नौकरी छोड़कर जाना चाहोगे तो मैं तुम्हारी नाक काट लूँगा और अगर मैं तुम्हें नौकरी से हटाऊँगा तो तुम मेरी नाक काट लेना। यह शर्त मंजूर हो तो आज ही से काम शुरू कर दो।"

चन्द्र ने पूछा, "मुझे काम क्या करना होगा ?"

जाट ने कहा, "यही घर का और खेती-बाड़ी का काम-काज।"

चन्द्र ने मंजूर कर लिया और उसी दिन से नौकरी शुरू कर दी। काम करते उसे कोई एक महीना हो गया। तनख्वाह का दिन नजदीक आ गया था।

जाट ने सोचा--'अब यह महीने की तनख्वाह माँगेगा, इसलिए कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि यह बिना तनख्वाह लिए भाग जाए।'

उसने एक ऐसा घड़ा लिया जो पेंदे से रिसता था। यह रिसता घड़ा उसने चन्द्र को दिया और कहा कि वह कोने में बड़ा मटका पड़ा है, उसमें कोई दस घड़े पानी आता है। शाम तक उसे भर छोड़ना।

चन्द्र घड़ा उठाकर कुएँ पर गया और भरकर वापस आने लगा। घड़े का पानी रिसता रहा और चन्द्र के कपड़ों को भिगोने लगा। और जब तक वह घर पहुँचा घड़ा खाली हो चुका था। दूसरा कोई घड़ा घर पर था नहीं और इस घड़े का छेद साफ दिखाई नहीं देता था। वह बार-बार भरकर लाता किन्तु घर तक पहुँचते-पहुँचते घड़ा खाली हो जाता। बड़ा मटका शाम तक खाली का खाली ही रहा।

शाम को जाट ने देखा कि मटका खाली है तो चन्द्र को डाँटने लगा। चन्द्र ने कहा, "घड़े में छेद है।" जाट ने कहा, "दिखाओ।" पर छेद बारीक था और दिखाई देता नहीं था। जाट ने कहा, "आज मैं तुम्हें माफ किये देता हूँ पर कल अवश्य भर छोड़ना।"

चन्द्र ने कहा, "यह मुझसे नहीं हो सकता।"

बस, जाट भी यही सुनना चाहता था। कहने लगा, "नहीं हो सकता तो मत करो। नाक कटाओ और घर जाओ।"

चन्द्र बेचारा रात को भागकर खाली हाथ घर लौट आया। उसने अपनी सारी राम-कहानी भोला को सुनाई। भोला ने कहा, "भैया, अब की मैं जाता हूँ। आप घर रहें।" अब चन्द्र उसे कैसे रोकता?

दूसरे ही दिन भोला नौकरी के लिए निकल पड़ा और उसी जाट के पास जा पहुँचा। जाट ने पुरानी शर्तों पर उसे भी नौकर रख लिया। जब महीना पूरा

हुआ और वेतन मिलने का दिन आया तो वह छेदवाला घड़ा उसे भी दे दिया गया और शाम तक बड़ा मटका भरने का हुक्म हुआ।

भोला ने घड़ा उठाया और कुएँ की ओर चल पड़ा। कुछ पग चलने पर वह जान-बूझकर फिसल पड़ा और घड़ा फूट गया। वापस आकर उसने दूसरा घड़ा माँगा। जाट ने फिर छेदवाला घड़ा दे दिया। भोला ने वह भी फोड़ दिया। तब जाट ने सोचा—'कोई नया तरीका सोचना चाहिए।'

दूसरे दिन वह भोला को कह गया, "मेरे वापस आने तक खाना बना रखना। दो मेहमान भी आएंगे, उनके लिए भी खाना बनाना है।"

यह कहकर जाट चला गया। भोला रसोई का सामान जुटाने लगा। पर घर में लकड़ियों के नाम से एक तिनका भी न था। उसने घर में रखे खेती-बाड़ी के औजारों के दस्ते निकाले और चीर-फाड़कर उनसे खाना पका डाला।

दूसरे दिन जब जाट खेत पर काम करने चला और औजारों को सँभालने लगा तो सभी के दस्ते गायब! भोला से पूछा तो उसने सहज भाव से कह दिया कि उनसे कल रसोई बनाई थी। जाट दाँत पीसकर रह गया।

ईख की फसल कट रही थी। जाट और उसकी स्त्री खेत पर काम कर रहे थे। घर पर थी जाट की बूढ़ी माँ। भोला को गन्नों का बोझ देते हुए जाट ने कहा, "इसे घर पर छोड़ आओ।"

भोला गन्नों का बोझ उठाकर घर पहुंचा और बुढ़िया से पूछने लगा, "बोझ को कहाँ रखूँ?" बुढ़िया ने हाथ का संकेत करते हुए बताया, "उस ओर।"

पर भोला ने सुनी-अनसुनी करके फिर अपनी बात दोहराई, "बूढ़ी माँ! इस गन्ने के बोझ को कहाँ रखूँ?"

बुढ़िया ने फिर उसी ओर संकेत करके कहा, "वहाँ।"

पर भोला तो शरारत करने पर तुला हुआ था। अब की वह जरा तीखे

स्वर में बोला, "बुढ़िया, जल्दी बताओ कहाँ रखूँ ? बोझ से मेरी गर्दन टूटी जा रही है।"

बुढ़िया को भी क्रोध आ गया। उसने क्रोध में भरकर कह दिया, "मेरे सिर पर !" यह सुनना था कि भोला ने गन्नों का भारी बोझ पूरे जोर से बुढ़िया के सिर पर दे मारा।

एक चीख के साथ बेचारी बुढ़िया के प्राण-पखेरू उड़ गये।

जाट ने घर आकर देखा तो छाती पीट ली और भोला को गालियाँ बकने लगा। पर भोला ने अपनी सफाई में कह दिया कि मेरे पूछने पर बुढ़िया ने कहा था, "मेरे सिर पर रख दो, इसमें मेरा क्या दोष ?"

जाट भोला की नित नई शरारतों से तंग आ गया। पर करता क्या ?

एक दिन रात को जाट का लड़का जाग उठा और टट्टी जाने के लिए कहने लगा। जाट ने भोला को जगाकर लड़के को टट्टी करा लाने की आज्ञा दी। भोला उसे टट्टी फिरने की जगह ले गया और कहने लगा, "खबरदार, जो टट्टी के साथ पेशाब किया।"

लड़का डरा। भला वह पेशाब किये बिना टट्टी कैसे करता ? उसी तरह बिना टट्टी किये वापस आ गया। टट्टी रोकने के कारण उसके पेट में दर्द होने लगा। वह रो पड़ा। पूछने पर उसने फिर टट्टी जाने को कहा। जाट ने फिर भोला को साथ भेज दिया। जाते-जाते भोला ने कहा, "यह लड़का वैसे ही घरभर की नींद खराब कर रहा है। पहली बार भी बिना टट्टी किये लौट आया था।" कुछ आगे जाकर भोला ने लड़के को फिर धमकाया, "खबरदार, जो तूने टट्टी के साथ पेशाब किया।"

लड़का बेचारा डर के मारे फिर वैसे ही लौट आया। आकर दो मिनट लेटा था कि फिर रोने लगा। दिनभर का थका जाट नींद उचटने से खीझ रहा था।

उधर भोला ने अपनी बात फिर दोहराई, "यह टट्टी तो करता नहीं है। यों ही शोर मचा रहा है।"

यह सुनकर जाट और भी खीझ उठा। गुस्से में उसने कहा, "अब की बार भी टट्टी न करे तो इसे पत्थर पर दे पटकना।"

भोला ने लड़के को फिर धमकाया, "खबरदार, जो टट्टी के साथ पेशाब किया।" घबराया हुआ लड़का टट्टी नहीं कर सका। भोला ने उसे दोनों टाँगों से पकड़कर पत्थर पर दे मारा। बच्चे के प्राण निकल गये। भोला अकेला घर लौटा।

अब जाट ने पूछा कि लड़का कहाँ है तो उसने सारी बात कह सुनाई, "उसने अब की भी टट्टी नहीं की और मैंने आपके कहे अनुसार उसे पत्थर पर दे मारा।"

यह सुनना था कि जाट और उसकी पत्नी दहाड़ें मार-मारकर रोने लगे।

भोला की इन कारगुज़ारियों से जाट की चिन्ता दिनोंदिन बढ़ने लगी; उसे आशंका होने लगी कि यह तो किसी दिन मेरे भी प्राण लेकर छोड़ेगा। इसलिए वह सोचने लगा—'कोई ऐसा उपाय किया जाए कि भोला की जीवन-लीला समाप्त हो जाए और किसी को कानोंकान पता भी न लगे। इस प्रकार बेटे की मौत का बदला भी ले सकूँगा और इससे जान भी बचेगी।'

दूसरी रात को भोला के सो जाने पर जाट ने अपनी पत्नी से अपना विचार प्रकट किया। तय हुआ कि आज ही आधी रात को सोते हुए भोला को चारपाई समेत उठाकर गाँव के बाहर वाले सूखे कुएँ में फेंक दिया जाए।

उधर भोला को नींद नहीं आई थी और वह सारी बातें सुन रहा था। दिनभर के थके-हारे जाट और जाट की पत्नी को सोते ही गहरी नींद आ गई। वे खुर्राटे भरने लगे। पर भोला को तो अपनी मौत पास आती दिखाई दे रही थी। वह जागता रहा।

भोला आधी रात से कुछ पहले ही बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। कीली पर टँगे जाट की पत्नी के कपड़े पहने और अपनी ओढ़ने की चद्दर सिर से पाँव तक जाट

की पत्नी को ओढ़ा दी। फिर जाकर चुपके से जाट को जगाया। रात के अँधेरे में जाट को दिखाई कुछ दे नहीं रहा था। और क्योंकि भोला संकेतों से ही जबान का काम ले रहा था इसलिए जबान पहचानने का सवाल भी पैदा नहीं हुआ।

उनींदा जाट हड़बड़ाता हुआ उठा। भोला और जाट ने मिलकर जाट की पत्नी की खाट कन्धों पर उठाई और कुएँ की ओर चल पड़े। यह समय बात-चीत करने का तो था नहीं। दोनों चुपचाप कुएँ पर पहुँचे और खाट औंधी करके कुएँ में डाल दी। उसी तरह चुपके से घर लौट आए और सो गये।

घर लौटकर भोला ने अपने कपड़े पहने और सो रहा। सुबह उठकर रोज की तरह काम-काज में लग गया।

जाट ने भोला को देखा तो सिर पीट लिया। अनिष्ट की आशंका से उसका दिल काँप उठा। उसने भोला से पूछा, "क्यों रे भोला, तेरी मालकिन कहाँ है?"

भोला ने कहा, "बड़ी जल्दी भूल गये। आप ही तो रात को उन्हें कुएँ में फेंक आए हैं और अब ऐसा स्वांग कर रहे हैं कि जैसे कुछ पता ही न हो।" जाट को जिस बात की आशंका थी, वह होकर रही। अपने बनाये जाल में वह आप ही फँस गया था। बूढ़ी माँ और बच्चे के बाद स्त्री की भी जान गँवा बैठा।

अब तो उसे यह साफ दिखाई देने लगा कि यह किसी दिन मेरी भी जान लेकर रहेगा। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि इसे अपनी ससुराल छोड़ आऊँगा और वे इसे मरवाने का कोई प्रबन्ध कर देंगे।

वह आप भी तैयार हुआ और भोला को भी तैयार होने को कहा। ससुराल की राह पकड़ी।

जब ससुराल थोड़ी दूर रह गयी तो उसने भोला से कहा, "तुम आगे जाकर मेरे आने की खबर दे दो।"

भोला मालिक से आगे हो गया। रास्ते में उसने एक ऐसी जड़ी उखाड़ी, जिसके खाने से दस्त लग जाते। वहाँ पहुँचते ही जाट की सास से उसने कहा कि

आपके जमाई साहब आ रहे हैं। किन्तु उनकी तबीयत कुछ ठीक नहीं है। इसलिए उन्होंने यह दवाई भेजी है और कहा है कि इसे बारीक कूट-छानकर रोटी में डाल दें। सास ने वैसा ही किया। रात को सभी ने खाना खाया, इधर-उधर की बातें हुईं और सो गये।

दवाई के कारण जाट को दस्त लग गये और बेचारा सारी रात परेशान रहा।

दिन में जाट ने अपनी सारी राम-कहानी सास को कह सुनाई और इस नौकर से किसी तरह पिण्ड छुड़ाने को कहा। निश्चय हुआ कि जाट आधी रात को उठकर चुपचाप अपने घर चला जाए और पीछे से उसी रात भोला को मरवा डाला जाए।

भोला भी पूरी तरह सशंक था। वह रातभर सोया नहीं और घर के भीतर की हलचल को कान लगाकर सुनता रहा। उसे जाट के उठकर चल देने का पता लग गया। वह भी चुपके से उठा और जाट के पीछे हो लिया। रात के अँधेरे में जाट को भोला के पीछे चलने का जरा भी पता न लगा। कोई पहर दिन चढ़ जाट एक बावड़ी पर बैठकर सुस्ताने लगा और गाँठ में बँधी रात की रोटी को खोलकर खाने बैठा। इतने में पीछे से भोला भी आ पहुँचा। जाट ने देखा तो उसके होश गुम हो गये। अब उसे विश्वास हो गया कि भोला से जान छुड़ाने का केवल एक उपाय है और वह यह कि अपनी नाक कटवा ली जाए। और उसने ऐसा ही किया भी। भोला ने उसकी नाक काट ली और इस तरह अपने भाई को सताने का पूरा बदला लिया।

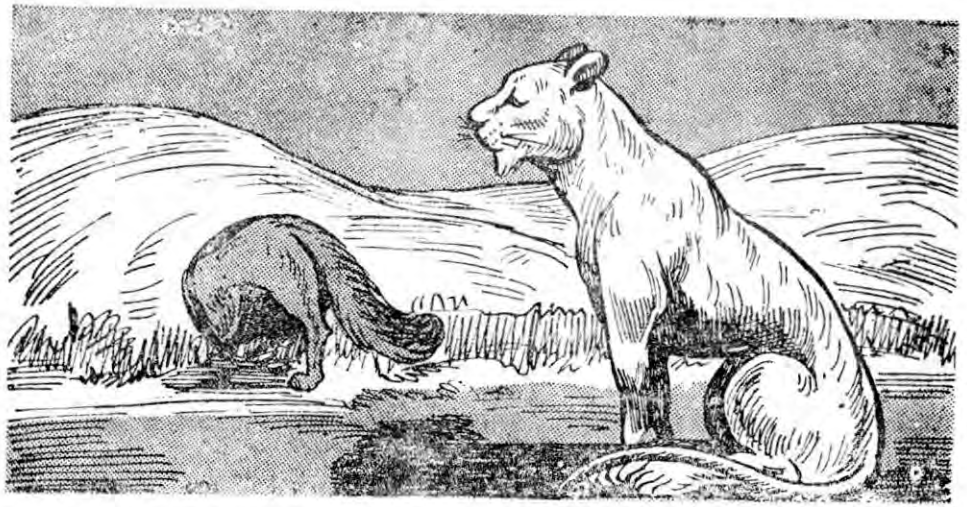

7

शेर और महाशेर

दो दिन लगातार वर्षा होती रही। जंगल के सारे पशु-पक्षी अपने-अपने घरों से बाहर नहीं निकल सके थे। दो दिनों से उनके पेट में कुछ गया नहीं था। और अब वर्षा बन्द हुई तो सारे के सारे एकदम अपने-अपने स्थानों से भोजन की खोज में निकल पड़े।

एक सियार भूख से बेहाल, भोजन ढूँढता एक शेर की माँद में जा पहुँचा। शेर भी शिकार के लिए बाहर निकलने की सोच ही रहा था। अपनी माँद में सियार को इस निडरता से घुसते देख, उसने सोचा—'यह कौन ऐसा दुःसाहसी है, जो बेखटके बढ़ा चला आ रहा है!' वह आश्चर्यचकित था।

दूसरे ही क्षण उसने कड़कते स्वर में पूछा, "कौन हो तुम जो इस प्रकार बढ़े चले आ रहे हो?"

सियार, जिसने अभी तक शेर को नहीं देखा था, शेर की आवाज़ सुनकर पहले तो घबराया किन्तु दूसरे ही क्षण सारी परिस्थिति को समझकर बड़ी लापर-

वाही से कहा, "केसरी, क्या मुझे नहीं जानते ? मैं महाशेर हूँ, आस-पास के सात जंगलों का स्वामी। आप वाला जंगल भी इन्हीं सात में से एक है।" वह उसी तरह निडरतापूर्वक बोलता रहा, "मैं आपको सावधान करने आया हूँ कि आप अपने जंगल की सीमा छोड़कर कभी बाहर मत निकलियेगा ताकि किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा न हो।"

अब तक शेर का जितने भी जानवरों से सामना हुआ था, वे या तो उसे देखते ही भाग गये थे या मौत के डर से थर-थर काँपते, भय से सिकुड़ते, आत्म-समर्पण कर देते थे। उसने सोचा, निश्चय ही यह कोई असाधारण शक्तिशाली जीव है जो मुझसे डरना तो दूर रहा, उलटे धमका रहा है। और फिर सात जंगलों का राजा ! शेर ने उसकी बात मान ली और इस प्रकार उसे अपने से अधिक शक्तिशाली के रूप में स्वीकार कर लिया।

शेर की एक पुत्री थी। उसने सोचा, क्यों न उसकी शादी इस महाशेर से कर दी जाए। उसने अपने मन की बात महाशेर से कही और उसने भी झट मान ली। शादी का दिन निश्चित हो गया। शेर ने कहा, "कम-से-कम एक सौ बाराती अवश्य लाइएगा।"

बात समाप्त हुई। सियार बाहर निकला तो उसने चैन की साँस ली। अपनी चातुरी पर वह फूला नहीं समा रहा था कि उसने आज शेर को बुद्धू बनाया।

वह शाम को अपनी बिरादरी में पहुँचा। रोज की हा-हा, हू-हू के बाद उसने आज की घटना साथियों से कह सुनाई और उन्हें बारात में चलने का निमंत्रण दिया। पर उनमें से एक भी तैयार न हुआ। वे तो उसे भी जाने से रोकने लगे।

अन्त में निश्चित तिथि को सियार बहादुर अकेले ही दूल्हा बनकर शेरनी को ब्याहने के लिए चल पड़े।

शेर ने देखा कि जमाई साहब अकेले ही आ रहे हैं। शेर ने पूछा, "बाकी बाराती कहाँ हैं ?"

भेड़-बकरियाँ क्यों न खा लें ?"

महाशेर बोले, "ठीक ही तो कह रही हो।"

शेरनी ने झपटकर दो बड़े-बड़े बकरों को फाड़ डाला और अपनी भूख मिटाई। उधर महाशेर एक भेड़ के बच्चे से दो-दो हाथ कर रहे थे।

शेरनी ने फिर कहा, "आप तो गीदड़ों की तरह उस भेड़ के बच्चे से जूझ रहे थे।"

महाशेर ने दुबारा गीदड़ों से अपनी उपमा दी जाती सुनी तो कुछ सक-पकाए कि कहीं पोल खुल तो नहीं गई। परन्तु फिर बोले, "तुम तो निरी गँवार हो। जो स्वाद बच्चे के माँस में होता है, वह बड़े के माँस में नहीं।"

बातें करते-करते वे फिर आगे बढ़े। गीदड़ की नज़र जंगली बेर की झाड़ियों पर पड़ी। उसके मुँह में पानी भर आया। उसने निश्चय किया, कुछ भी हो, बेर तो खाने ही चाहिएँ।

उसने शेरनी को आगे चलने को कहा और स्वयं रुककर बेर खाने लगा। उसने बहुत जल्दी बेरों से मुँह भर लिया और भागा उन्हें चबाते-चबाते।

शेरनी उसे मुँह चलाते देखकर बोली, "यह मुँह में क्या डाले हुए हो, जी ?"

महाशेर बड़े रौब से बोले, "थोड़े दिन साथ रहोगी तो सब समझ जाओगी। मुझे सुपारी चबाने की आदत है।"

थोड़ी दूर आगे महाशेर की माँद थी। उसके पास पहुँचे तो सियार ने शेरनी से कहा, "तुम जरा यहाँ ठहरो। यहाँ मेरे एक मित्र रहते हैं। जरा उनसे मिल आऊँ।"

शेरनी को वहाँ खड़ा कर वह अपनी माँद में जा घुसा। शाम हो गई थी। सारे सियार अपनी-अपनी माँद से निकल आए और 'हुआ-हुआ' का सम्मिलित गान गाने लगे। महाशेर ने भी उनके स्वरों में अपना स्वर मिला दिया।

शेरनी देर तक प्रतीक्षा करती रही, पर महाशेर लौटकर नहीं आए।

"बस, कुछ मत पूछिए, यह तो अपनी लड़की का सौभाग्य समझिए कि मैं बचकर आ गया। भारी बरसात के कारण रास्ते में पड़ने वाली नदी में बड़े जोर की बाढ़ आई हुई है। बस, सारे के सारे उसे पार करते समय बह गये।"

शेर ने भगवान् को धन्यवाद दिया कि उसका जमाई आज मौत के मुँह से बचकर निकल आया था।

विवाह हो गया। शेर ने अपनी बेटी विदा कर दी। महाशेर दुल्हिन के साथ अपने घर लौट चले।

रास्ते में एक छोटी-सी नदी पड़ती थी, शेरनी ने उसे झट से पार कर लिया पर सियार मियाँ गोते खाने लगे। डूबते-तैरते किसी तरह दूसरी पार पहुँचे तो शेरनी ने कहा, "आपने तो बहुत देर लगा दी। थोड़े से पानी में भी आप गीदड़ों की तरह गोते खा रहे थे।"

महाशेर अकड़ के साथ बोले, "तू औरत की जात क्या जाने! अपने को तो सन्ध्या-वन्दन करना था। इसी से देर लग गई।"

दोनों फिर आगे बढ़े। रास्ते में एक गाँव पड़ता था। शेरनी ने कहा, "अजी, तुम भी दहाड़ो, मैं भी दहाड़ूँगी। गाँव के लोग अपने-अपने घरों में घुस जाएँगे और हमारा रास्ता साफ हो जाएगा।"

महाशेर बोले, "बात तो ठीक है। ऐसा ही करना चाहिए। पर पहले तुम्हीं दहाड़ो।"

शेरनी दहाड़ने लगी। गाँव के लोग डर के मारे अपने-अपने घरों में घुस गये।

शेरनी ने महाशेर से कहा, "अजी, अब आप दहाड़ो न।"

महाशेर ने उत्तर दिया, "जब तुम्हारी दहाड़ सुनकर ही लोग इतने घबरा गये हैं तो मेरी आवाज़ से तो वे डर के मारे मर ही जायँगे।"

दोनों फिर आगे बढ़े। रास्ते के जंगल में एक गड़रिया अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहा था। शेरनी बोली, "अब तो जोर की भूख लगने लगी है। यहीं एक-दो